International Journal For Applied Research in Science and Engineering
Volume 2, Issue 7, July-2019 *ISSN (Online): 2456-124X*

जैन दर्शन

डॉ. पूनम अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
धर्मसमाज कॉलेज, अलीगढ़

प्रस्तावना :–

जैन दर्शन वेदों को प्रमाण न मानने वाला एक भारतीय दर्शन है, जो अपने आचरण में अहिंसा, त्याग, तपस्या आदि को प्रमुख मानता है। जैन शब्द जिन से बना है जिसका अर्थ है, वह पुरूष जिसने समस्त मानवीय वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। अर्हत अथवा तीर्थकर इसी प्रकार के व्यक्ति थे। जैन मानते हैं उनका धर्म अनादि और सनातन है, किन्तु काल से सीमित है। अतः विकास तिरोभाव क्रम से दो चक्रों–उत्सर्पिर्णी और अवसर्पिणी में विभक्त हैं। उत्सार्पिर्णी का अर्थ है ऊपर जाने वाली। इसमें जीव अधोगति को प्राप्त होते हैं। अवसर्पिर्णी से जीव और जगत क्रमशः उत्तम गति से अधोगति को प्राप्त होते हैं। इस समय अपसर्पिर्णी का पॉचवा युग चल रहा है। प्रत्येक चक्र में चौबीस तीर्थकर होते हैं।

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य :–

प्रो. मैक्यूलर के शब्दों में ''भारत में दर्शन ज्ञान के लिये नहीं, बल्कि उस सर्वोच्च लक्ष्य के लिये था, जिसके लिये मनुष्य इस जीवन में चेष्टा कर सकता है। ''भारतीय दर्शन में शिक्षा का अर्थ जीवन का दिव्य रूपान्तर और सांसरिक दुःखों से मुक्ति पाना है। चार्वाक के अतिरिक्त सभी भारतीय दर्शन, मोक्ष को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। जैन दर्शन भी इसका अपवाद नहीं हैं। इनहोंने भी ''मुक्ति–उद्देश्य'' शिक्षा का सर्वोच्य उद्देश्य माना है। ''काषायों यथा–क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के कारण जीव के पुद्गल से अक्रान्त हो जाने को जैनों ने बन्धन अथवा बन्ध तत्व कहा है। ''जीव का बन्धन मानसिक प्रवृत्तियों के कारण होता है। दूषित मनोभाव ही बनधन का मूल कारण है और पुदगल आस्त्रव मनोभाव का परिणाम है। बन्धन की अवस्था में जीव और पुद्गल एक दूसरे में प्रविष्ट हो जाते हैं।

 Copyright 2019.All rights reserved.

(1) **समितियॉ–** इनके भेद हैं ईर्ष्या समिति चलने–फिरने के नियमों का पालन, भाषा समिति बोलने के नियमों का पालन, भाषा समिति के नियमों का पालन, एषग समिति भिक्षा मॉगने के नियमों का पालन, आदान निक्षेपण समिति धार्मिक कार्य के लिये भिक्षा में से कुछ अंग बचाना तथा प्रतिस्थापना समिति भिक्षा या दान को अस्वीकार करना।

(2) **गुप्तियॉ–** भोग को रोकने को गुप्ति कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती हैं– कार्य गुप्ति मनोगुप्ति (संकल्प आदि मन के व्यापार का निरोध)।

(3) **व्रत–** व्रतों के पालन से आत्मा में कायर्म पुद्गलों का प्रवेश रूक जाता है। ये प्रत निम्न है–

अ. **अहिंसा–** जीवों की हिंसा न करना।

ब. **सत्य–** मिथ्या वचन का परित्याग। सत्य का आदर्श है।
सूनृत अर्थात सबका हितकारी और प्रिय सत्य।

स. **अस्तेय–** बिना दिये पर–द्रव्य को ग्रहण न करना।

द. **ब्रह्मचर्य–** वासनाओं का परित्याग।

य. **अपरिग्रह–** विजयसक्ति का त्याग।

(4) **धर्म –** जैन दर्शन ने दस धर्म बतलाये हैं। ये हैं क्षमा, मृदुता, सरलता, शौच, सत्य, तप, त्याग, ओदासीन्य व ब्रह्मचर्य।

(5) **अनुप्रेक्षाऍ–** जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिये बारह अनुप्रेक्षाओं से युक्त होना आवश्यक माना हैं ये हैं– अनित्य, अशरण, ससांर, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर निर्जरा, लोक बोधिदुर्लभ तथा धर्मानुप्रेक्षा।

(6) **परीषह–**उमास्वामी के अनुसार मुक्ति मार्ग से च्युत न होने के योग्य और कर्मो के नाश के लिय सहन करने योग्य जो है वह परीषह कहलाते हैं। यह परीषह बाईस हैं– क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण, दशंनक, नग्नत्व, अलाभ, रोग, तृण, स्पर्श, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान व अदर्शन।

(7) **चरित्र–** पॉच प्रकार के चरित्रों का सम्पादन करना भी आवश्यक है। सामायिक चरित्र छेदों पर स्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्म–संवारय तथा यथास्यात का निरोध होना।

 Copyright 2019.All rights reserved.

सम्यक ज्ञान चार प्रकार का होता है।

1. मति ज्ञान–इन्द्रिय व मन से पैदा होने वाला जीव व अजीव विषय का ज्ञान मति ज्ञान है।
2. श्रुत ज्ञान–किसी आप्त के वचन सुनने से अथवा आप्त वाक्यों के अध्ययन से ज्ञान होता है वह श्रुति ज्ञान है।
3. अवधिज्ञान– रूपी द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान अवधि ज्ञान है।
4. मनःपर्यायज्ञान–मन के विविध पर्यायों का प्रत्यक्ष ज्ञान मनः पर्यायज्ञान है।

मिथ्या ज्ञान के तीन प्रकार है।

1. मत्य ज्ञान– मति विषयक मिथ्या ज्ञान
2. श्रुत ज्ञान– श्रुत विषयक मिथ्या ज्ञान
3. विभग ज्ञान– अवधि विषयक मिथ्या ज्ञान

छात्र संकल्पना :–

जैन दर्शन के 'षड् द्रव्य निरूपण' मे पंच इन्द्रिय युक्त होने के कारण मनुष्य का स्थान समस्त जीवों में सबसे ऊॅचा माना है। उच्चता के स्तर का निर्धारण इन्द्रियों की संख्या के आधार पर किया गया है, इस कारण यहॉ एक इन्द्रिय वाला जीव निम्नतम है वहॉ पॉच इन्द्रियों के कारण मानव को सर्वोच्च माना गया है मनुष्य में तो मन रूप में छठी इन्द्रिय का अस्तित्व भी माना गया है। सामान्यता अन्य जीवों के व्यवहार को क्षुधा, भय, प्यास आदि प्राकृतिक शक्तियॉ निर्धारित करती हैं जबकि मनयुक्त होने के कारण मानव शिशु स्वयं के व्यवहार को नियंत्रत कर सकता है। अतः शिक्षा द्वारा उसके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन सम्भव है।

जैन दर्शन आत्मा को शरीर से भिन्न एक पृथक चेतन सत्ता मानता है इस प्रकार छात्र के व्यक्तित्व निर्माण में दो तत्वों का योगदान होता है– एक चैतन्य जो समग्र शरीर में व्याप्त है और दूसरा जो इन्द्रिय से निर्मित है।

जैन दर्शन की यह मान्यता है कि संसार अनेक पौदगलिक अणुओं से निर्मित है। अतः बालक का शरीर व वातावरण भी पौदगलिक अणुओं के मिश्रण के फलस्वरूप बना है, क्योंकि जैन दर्शन में कर्म भी पुद्गल द्रव्य से निर्मित है। अतः व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करता है, उसी प्रकारन के कर्म

 Copyright 2019.All rights reserved.

पुद्गल उसे आवृत कर लेते हैं। अगले जन्म में उक्त कार्मिक पुद्गलों से निर्मित शरीर को जीवात्मा धारण करती है। छात्र का शरीर उसके पूर्वजन्मों में अजित कर्मों का विषाक है जो स्थूल रूप धारण करता है और शरीरनुसार अपने को समाहित कर लेता है।

क्योंकि पूर्व जनम में अर्जित कर्म ही इस जन्म के निधारक होते हैं, इस कारण कोई भी दो छात्र, कर्म समान न होने के कारण समान नहीं होते हैं। बुद्धि शारीरिक शक्ति, इन्द्रिय विकास एवं संवेदनशीलता के क्षेत्र में छात्रों में विभिन्नता होती है, किन्तु आत्मा के नित्य स्वरूप के कारण समस्त छात्र इस दृष्टिकोंण से समान होते हैं।

किसी भी छात्र के शिक्षण में पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि महत्वपूर्ण साधन होते हैं। यद्यपि निहित चेतना तत्व के दृष्टिकोंण से समस्त छात्र समान होते हैं। किन्तु कर्मजन्य शरीर के दृष्टिकोंण से उनमें भिन्नता है। इस कारण जैन दर्शन प्रत्येक छात्र के लिये समान पाठ्यक्रम पर जोर नहीं देता है। इसी प्रकार समान शिक्षण विधि भी सम्भव नहीं है, क्योंकि छात्रों की ग्रहणशीलता में अन्तर है, कोई छात्र स्कूल माध्यम से तो कोई तर्क से अधिक शीघ्रता से ज्ञानार्जन कर सकता है। इसी प्रकार किसी छात्र को कम समय लगता है तो अन्य अधिक समय ले सकता है।

समान चेतन तत्व होने के बाद भी जैन दर्शन प्रत्येक छात्र के विषिश्ट व्यक्तित्व पर जोर देता है। प्रत्येक छात्र अपनी नियमित का स्वयं ही नियन्ता एवं नियामक है, उसका अपना शरीर है, अपनी स्वतंत्र आत्मा है, अपने कर्म हैं और स्वयं अपने ही निर्णय हैं। वह अपने कर्मों पर स्वयं की नियन्त्रण कर सकता है इस दृष्टिकोंण से वह किसी प्रकार के बाह्य भय उसके कर्मों को निर्धारित नहीं करते। उसे स्वयं ही निर्णय लेना है क्योंकि अपने कर्मों का कर्ता व भौक्ता वह स्वयं ही है। शिक्षक द्वारा जीवात्मा में अन्तर्निहित पुद्गलों से आवृत ज्ञान को क्रमशः अनावृत मात्र कर सकते हैं। वह अनन्त ज्ञानयुक्त है, और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा की जानी चाहिए।

जैन दर्शन में छात्र के दो रूप बताये गये हैं– प्रथम श्रवण जो महाव्रती होता है और दूसरा श्रावण जो अणुव्रती होता है।

श्रवण का जीवन स्वयं के लिये न होकर समाज के लिये होता है। इस कारण उसकी शिक्षा पारमार्थिक होती है। उसके लिये जैन दर्शन में कठोर अनुशासन का प्रावधान किया गया है। उससे

 Copyright 2019.All rights reserved.

यह आशा की जाती है कि वह, वचन व कर्म से समान होगा। पंच महाव्रतों का पालन श्रमण के लिये अनिवार्य है।

श्रावण की शिक्षा सांसारिक जीवन को पवित्रता से जीने हेतु होती है। इस प्रकार उसका व्रत श्रवण की अपेक्षा सरल होता है उसके जीवन में सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा आदि का अक्षरंशः व कठोरता से पालन सम्भव नहीं है। इनका सीमित रूप से पालन ही काफी माना गया है। केवल वह ऐसा कोई आचरण नहीं करेगा, जो दूसरों के लिये अहितकर हो। उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसके पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा व्यवसायिक जीवन के हर पहलू में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, निर्लोलुपता एवं अपरिग्रह परिलक्षित होगा। उसको प्रत्येक ज्ञेय में स्वयं पर नियन्त्रण करना चाहिये।

जैन दर्शन के अनुसार श्रमण के लिये बाहर 'अनुप्रेक्षाओं या भावनाओं से युक्त रहना आवश्यक है। ये निम्न है–

(1) **अनित्य–** धर्म को छोड़कर सभी वस्तुओं को अनित्य मानना।

(2) **अशरण–** सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरी शरण नहीं।

(3) **संसार–** जीवन मरण की भावना।

(4) **एकत्व–** जीव अपने कर्मों का भोगी है।

(6) **अन्यत्व–** आत्मा को शरीर से भिन्न मानना।

(7) **आस्त्रव–** कर्म के प्रवेश के निरोध की भावना।

(8) **संवर–** कर्म के प्रवेश के निरोध की भावना।

(9) **निर्जरा–** जीव में प्रविष्ट कर्म पुदगलों को बाहर निकालने की भावना।

(10) **बोधिदुर्लभत्व–** सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्र को दुर्लभ समझने की भावना।

(11) **लोक–** जीवात्मा शरीर तथा जगत की वस्तुओं की भावना।

(12) **धर्मानुप्रेक्षा–** धर्म मार्ग से च्युत न होना।

जैन दर्शन में छात्र की ग्रहणशीलता पर अत्यधिक बल दिया गया है। जैन दर्शन में छात्र से गुरू के प्रति समर्पण की अपेक्षा रखी गई है। उसका विनीत व गम्भीर होना आवश्यक माना है।

 Copyright 2019.All rights reserved.

छात्र के लक्षण

उत्तराध्ययन सूत्र में छात्र के निम्न लक्षण बताये गये हैं –

1. गुरूजनों से निम्रता से वार्तालाप करता हो।
2. उनसे नीचे आसान पर बैठता हो व चप्पल न हो।
3. निष्कपट भाव से बर्ताव करता हो।
4. कौतुक (मसखरापन) न करता हो, तथा उनमें अनावश्यक रूचि न लेता हो।
5. गुरूजनों का अपमान न करता हो।
6. कलहोत्पादक बातें न करता हो।
7. ज्ञान को प्राप्त करके गर्वोन्मत न हो जाता हो।
8. मित्रता का निर्वाह करता हो।
9. गुरूजनों के सदा दोष ही न देखता हो।
10. मित्रों पर क्रोध न करता हो।
11. अप्रिय मित्र के गुणों को भी ग्रहण करता हो तथा परोक्ष में भी उसकी प्रशंसा करता हो।

अध्यापक का व्यवहार

जैन दर्शन में अध्यापक एक समन्वित रूप से विकसित व्यक्तित्व होता है। उसके व्यवहार में निम्नांकित लक्षण दिखाई देते हैं–

(1) पंच महाव्रत उसके जीवन के अंग बन जाते हैं, जो इस प्रकार है–

1. मन, वाणी तथा कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा न करना।
2. विचार, वाणी तथा व्यवहार में सत्य का पालन करना।
3. स्थूल तथा सूक्ष्म किसी भी प्रकार की चोरी न करना।
4. सभी प्रकार के काम भोगों को संयमित करना तथा इन्द्रिय लोलुपता को नियन्त्रित करना।
5. विषयासंक्ति का त्याग करना तथा वस्तुओं के संग्रह को नियन्त्रित करना।

(2) चलने, बोलने, उठने, बैठने, भोजन करने आदि सभी प्रकार के जीवन व्यापारों में सतर्कता

 Copyright 2019.All rights reserved.

(समिति) बरतना, जिससे कि किसी जीव की हत्या न हो।

(3) मन, वचन तथा कर्म में संयम (गुप्ति) होना।

(4) दस प्रकार के गुण धर्म जीवन में परिलक्षित होना।

यह दस धर्म हैं– क्षमा, मादर्व (कोमलता), आर्जव (सरलता), सत्य सोच (पवित्रता), संयम, तप, त्याग, अममत्व तथा ब्रह्मचर्य।

(5) जीव तथा संसार का सही ज्ञान होना तथा उसके सम्बन्ध की बौद्धिक अवधारणा स्पष्ट होना।

(6) भूख, प्यास, शीत, उष्णता आदि के कारण होने वाले कष्टों को सहन कर सकना।

(7) जीवन में समता, निर्मलता, निर्लामवृति तथा सच्चरित्रता के गुणों का होना।

शिक्षण प्रक्रिया एवं पद्धति :–

जैन दर्शन में ज्ञान को जीव का स्वाभाविक गुण माना गया है। तत्वार्थ सूत्र में संस्कार के पॉच प्रकार माने गये हैं–

अ– मतिज्ञान– मतिज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा वस्तु का निश्चित बोध कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें किसी पदार्थ का ज्ञानेन्द्रियों से सम्पर्क स्थापित हो जाता है एवं मन के विश्लेषण आदि क्रियाओं द्वारा पदार्थ विशेष का बोध होता है।

मतिज्ञान से पूर्व दर्शन होता है। वस्तुओं के सातान्य गुणों का वह बोध जिसमें विशेष गुणो का प्रभाव रहता है एवं सूक्ष्म विवरण का ग्रहन नहीं होता दर्शन कहलाता है। इसे आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान में ''संवेदन'' कहा जाता है। दर्शन एक साधारण बोध है, जबकि ज्ञान निश्चित ज्ञान है, जिसे संज्ञात्मक अवबोध कहा जा सकता है।

(1) अवग्रह– किसी भी प्रत्यक्ष में सर्वप्रथम इन्द्रिय और अर्थ के सन्निवर्ष से जिस साधारण साान्य ज्ञान की उपलब्धि होती है, इस अवस्था को सम्मुध, आलोचन, ग्रहण, अवधारणा आदि भी कहा जाता है।

(2) ईहा– इन्द्रियार्थ सन्निवर्ष से उत्पन्न सामान्य प्रतीत के फलस्वरूप ज्ञाता के हृदय में दृष्य विषय के गुणों के ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसे ऊहा, तर्क, परीक्षा, विचारणा, जिज्ञासा आदि कहते हैं।

 Copyright 2019.All rights reserved.

(3) **अवाय–** ईहा के उपरानत जब मनुष्य को दृश्य वस्तु के गुणों का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, इस निश्चयात्मक ज्ञान कर स्थिति में ईहित वस्तु के सभी गुणों के सम्बन्ध में निर्णय होता है।

(4) **धारण–** प्रत्यक्ष की इस अन्तिम अवस्था में द्रष्टा के अन्तः करण एवं स्मृति में उस वस्तु का एक संस्कार बन जाता है, जिसके फलस्वरूप बाद में पदार्थ का स्मरण सम्भव होता है।

एक उदाहरण में इन सभी स्थितियों को स्पष्ट किया जा सकता है।

यदि 'यह पुष्प है' इस ज्ञान का विश्लेशण करें तो अवग्रह की स्थिति में व्यक्ति के नेत्र एवं पुष्प का सन्निवर्ष होता है, जिससे उसे यह प्रतीत होता है कि उसके सम्मुख कोई वस्तु है। ईहा की स्थिति में पुष्प के सामान्य ज्ञान के उपरान्त उसके गुणों के ज्ञान की इच्छा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। ईहा के उपरान्त जब व्यक्ति को दृश्य वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, जैसे, ''यह पुष्प रक्त कमल हैं, जब इस निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहा जाता है। अवाय के फलस्वरूप रक्त कमल प्रत्यय बन जाये ता यह स्थित धारणा है।

शिक्षा मनोविज्ञान में ''संवेदन'' का विश्लेषण भी इसी प्रकार से है। जैन दर्शन में ''व्यवहारिक प्रत्यक्ष'' का प्रत्यय यथार्थवादी दृष्टिकोंण लिये हुये है। इसके अनुसार पदार्थ मनल से परे भी यथार्थता रखता है। ज्ञाता से परे भी वस्तुओं की यथार्थ सत्ता है, जिसकी अभिव्यक्ति इन्द्रियों पर आश्रित है। ज्ञान की इस प्रक्रिया को अपरिवर्तनशील माना गया है।

इस प्रकार सभी प्रकार का इन्द्रियानुभव ज्ञात का समावेष मतिज्ञान के अन्तर्गत कर लिया जाता है। मतिज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

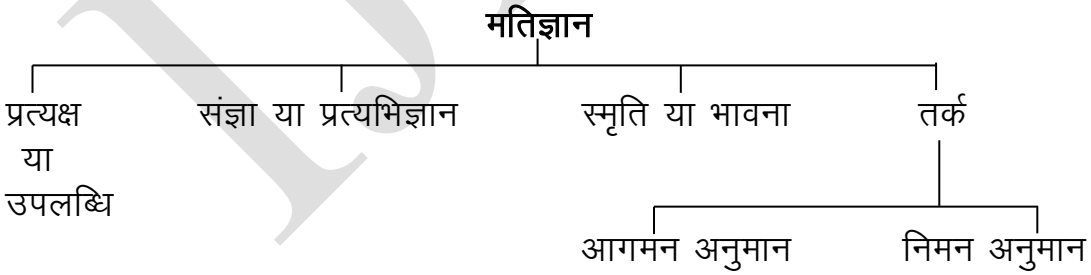

1. **प्रत्यक्ष–** उपलब्धि ज्ञान इन्द्रियों एवं वस्तु के प्रत्यक्ष सम्पर्क के फलस्वरूप प्राप्त होता है। यह ज्ञान पदार्थ सम्बन्धी होता है, एवं इसमें त्रुटि की सम्भावना कम एवं निश्चितता अधिक होती है।

2. **संज्ञा–** संज्ञा के अंतर्गत दो या दो से अधिक समान या विपरीत वस्तुओं की एक साथ करने के

 Copyright 2019.All rights reserved.

पश्चात् श्रेय वस्तु का प्रत्यभिज्ञान करना होता है।

3. **स्मृति–** स्मृति ज्ञान में वस्तु सामने उपस्थित नहीं होती है एवं ज्ञानेन्द्रियों का वस्तु से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता है। इसमें पूर्व अनुभव एवं समान वस्तु के साहचर्य के कारण किसी वस्तु के विषय में ज्ञान अर्जित किया जाता है।

4. **तर्क–** जिस समय उदाहरण के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाये या किसी उत्पत्ति का उदाहरणों द्वारा प्रमाणीकरण किया जाये त बवह तर्क या अनुमान विधि कहलाती है। इसमें किसी हेतु या साधन के माध्यम से ज्ञान अर्जित किया जाता है पूर्वानुमान लगाना इसी प्रकार का ज्ञान है।

5. **मतिज्ञान–** आधुनिक शिक्षा पद्धति में मति ज्ञान विधि का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इन्द्रियाँ, ज्ञान का द्वार मानी जाती हैं। विज्ञान शिक्षण का आधार ही प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रयोगशालाओं में छात्र अधिगम परिस्थितियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर ही अनुभव अर्जित करते हैं, जो निश्चित रूप से अधिक स्थायी व प्रभावशाली होता है। सामाजिक विज्ञान में अवलोकन विधि भी मतिज्ञान का ही रूप है। यहॉ पर भी अनुसंधानकर्ता प्रत्यक्ष सम्पर्क के माध्यम से ही वैध व विश्वसनीय ज्ञान अर्जित करता है। सहभागी अवलोकन व असहभागी अवलोकन होने में ही प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। गणित का आरम्भिक ज्ञान जिसमें प्रारम्भिक प्रत्यय जैसे जोड़, घटा, गुणा, भाग, प्रत्यक्ष ज्ञान से अधिक उपयुक्त विधि से विकसित किया जा सकता है। रेखा गणित के प्रमेयों का भी यदि पहले प्रत्यक्ष रूप से विश्लेषण कर दिया जाये तो वे अधिक स्पष्ट हो सकते हैं। भाषा शिक्षण में शब्द ज्ञान, प्रत्यक्ष विधि द्वारा कराना अनिवार्य होता है। प्रारम्भिक प्रत्यय वस्तु तथा नाम के प्रत्यक्ष साहचर्य से बनते हैं। बाद में द्वितीय प्रत्यय अन्य विधियों से भी बनाये जा सकते हैं।

पाठ्यक्रम :–

जैन दर्शन में आत्मा और जगत दोनो को ही सत्य माना है, इस कारण पाठ्यक्रम में भी लौकिक व आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषयों को समान महत्व दिया हुआ है। इसमें आध्यात्म और विज्ञान के विरोध को समन्वयकारी दृष्टिकोंण के आधार पर दूर करने का प्रयास किया गया है। जैन पाठ्यक्रम में जीवन के सुखपूर्ण बनाने हेतु जहॉ एक ओर जगत के ज्ञान और उसके रहस्यों के

 Copyright 2019.All rights reserved.

अनावरण पर जोर दिया गया है, वहॉ दूसरी ओर उनसे बचने और त्यागने का भी आग्रह किया है।

ज्ञानार्जन का साधन पाठ्यक्रम है। जैन दर्शन में ज्ञान के महत्व को स्वीकार किया गया है। आज्ञानी व्यक्ति तो पाप और श्रेयकर तथा करणीय और अकरणीय का भेद भी नही जानता तो वह ठीक से आचरण कैसे कर सकता है।

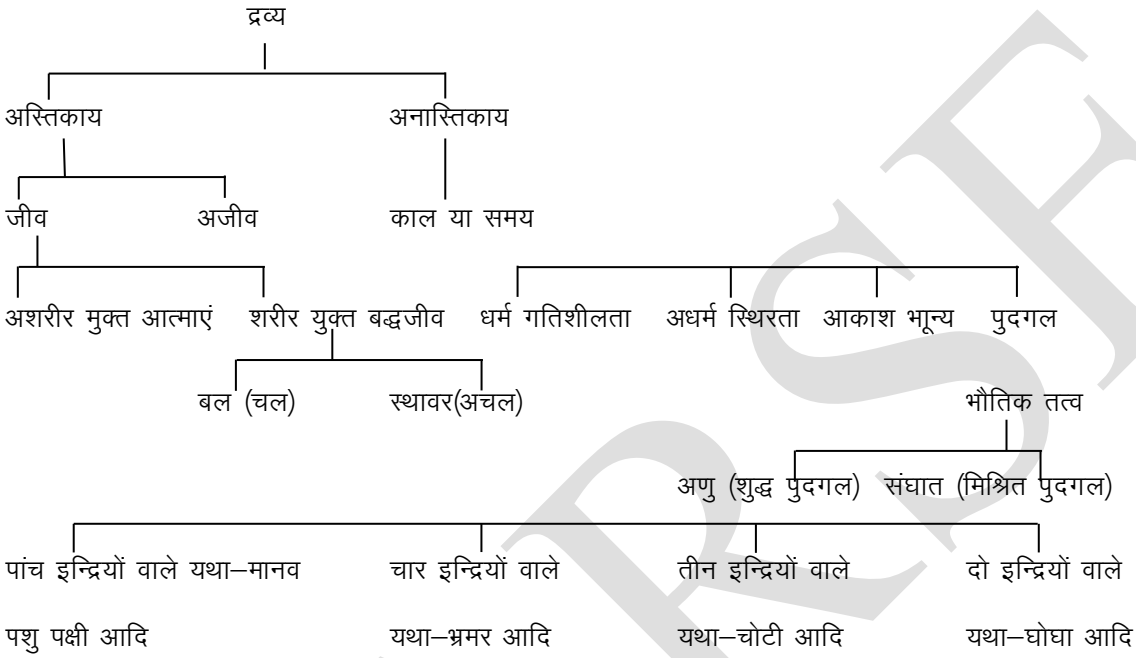

जीव के अध्ययन के दृष्टिकोंण के माध्यम से मानव विज्ञान का प्राकृतिक व मानवीय वातावरण में स्थान मानवीय संस्थाएॅ मनोविज्ञान मानव धर्म नीतिशास्त्र आदि विषयों के अध्ययन का भी जैन दर्शन आग्रह करता है। जैन पाठ्यक्रम में कला तथा शिल्प का उल्लेख तो मिलता है किन्तु उनका स्थान गौण है क्योंकि जैन दर्शन में जीवन के अन्तर्गत जड़ और चेतन सभी समावेश होने के कारण जीव रक्षा प्रत्यय भी अर्थहीन हो जाता है। जब तक द्रव्यों का पूर्ण रूपेण न हो तब तक जीव रक्षा सम्भव नहीं है। सामयिक ज्ञान के रूप में द्रव्यों के सम्बन्ध का ज्ञान यद्यपि जैन दर्शन में है जो जीवन को उत्तम बनाये चरित्र को उत्कृश्ट बनाये और अहिंसा के पालन में सहायक हो।

जैन दर्शन में अनुशासन :–

अनुशासन के दृष्टिकोंण से जैन दर्शन मे कठोर रूख अपनाया हुआ है। क्रोधी व्यक्ति शान्त भाव से अध्ययन नहीं कर सकता है। शिथिलता और आलस्य पर भी जैन दर्शन आग्रह करता है। जैन दर्शन में ज्ञानार्जन हेतु अनुशासन के लिये निम्न व्यवहार की अपेक्षा करता है।

 Copyright 2019.All rights reserved.

1. कौतुक–प्रिय न होना अर्थात् ज्ञान का उपहास न करते हुये उसे गम्भीरता से ग्रहण करना।
2. इन्द्रियों पर नियंत्रण करना, उन्हें सुखदायी विषयों से हटाकर अध्ययन हेतु अवधान को एकाग्र करना।
3. कठोर तथा अप्रिय भाषा का व्यवहार न करना,, क्योंकि जिस प्रकार की वाणी का प्रयोग किया जाता है वह परोक्ष रूप से चरित्र पर परिलक्षित होती है।
4. चरित्रवान होना।
5. शुद्ध आचार रखना।
6. लोलुपता से दूर रहना।
7. क्रोध न करना।
8. सत्य का सदैव अनुगामी रहना।

जैन दर्शन में छात्रों के अनुशासन में तप और संयम को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। उत्तराधान सत्र के अनुसार ''तपस्या की अग्नि बनाओ आत्मा का यज्ञ स्थल बनाओ, योग की कुल्फी लो, कर्म का ईधन बनाओ, संयम रूपी शान्ति का पाठ करो, इस प्रकार प्रशस्त होम होता है।''

संदर्भ सूची–

1-Kelting, Mary Whitney. 2001. Singing to the Jainas: Jain Laywomen, Ma Singing, and the Negotiations of Jain Devotion. Oxford: Oxford University Press
2-http://www.culturalindia.net/indian-religions/mahavira.html
3-interlinkage perspective of cultural conservation and peace building in the world, Interantional Conference, Makelle University, Ethiopia
4- https://peepintojainism.com/jainism_vs_christianity.html
5-http://www.senamirmir.com/theme/5-2001/gh/drgh.html
6-http://www.everyculture.com/Ja-Ma/Kenya.html#ixzz4vJt2yy5V

 Copyright 2019.All rights reserved.